

पुरुषार्थ चतुष्टय का पारस्परिक समन्वय शांतिपर्व के विशेष संदर्भ में

कैलाशचंद्र

शोधार्थी

भाषा विभाग (संस्कृत)

मानविकी एवं उदार शिक्षा संकाय

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय अस्थल बोहर रोहतक हरियाणा

डॉ. हरिओम

शोधनिर्देशक

सहायक आचार्य भाषा विभाग (संस्कृत)

मानविकी एवं उदार शिक्षा संकाय रोहतक हरियाणा

सारांश भारतीय मनीषियों के दार्शनिक विचारों का मूल आधार था, मनुष्य जीवन को भौतिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत करना। इन चिंतकों ने जीवन के सुख को दो भागों में विभक्त किया। पहला क्षणिक, अस्थिर एवं असत्य है। यह भौतिक सुख, शारीरिक आवश्यकताओं एवं कामना परक वृत्तियों की पूर्ति के लिए इहलौकिक सुख है किन्तु इस प्रकार का सुख सर्कीर्णता स्वार्थता और 'लिप्सा तथा वासना से जीवन को आबद्ध करनेवाला है जो हमारा आदर्श जीवन नहीं हो सकता। मनुष्य का संयमित और नियमित आचार तथा आध्यात्मिक विचार ही यथोचित निर्णय प्रदान कर सकने में समर्थ होता है। अतएव भारतीय जीवन दर्शन इन दोनों प्रवृत्तियों का संतुलित, सम्मिलित एवं समन्वित स्वरूप है, जिसे 'पुरुषार्थ' कहते हैं। मानव जीवन के चरम लक्ष्य प्राप्ति का नाम ही पुरुषार्थ है। यह उस सार्थक जीवन शक्ति का द्योतक है जो व्यक्ति को सांसारिक सुख भोग के बीच अपने धर्मपालन के माध्यम से ईश्वर प्राप्ति या मोक्ष की राह दिखाता है। यह इहलोक से परलोक को मिलाने वाला, सीमित मानव जीवन को असीम तथा पूर्ण परमात्मा से परिचित कराने वाला तथा मनुष्य के भौतिक, बौद्धिक, शारीरिक एवं नैतिक प्रगति का पथ प्रदर्शक है। इस अर्थ में पुरुषार्थ उन मानवीय गुणों का समन्वय है जो भौतिक सुख और आध्यात्मिक उन्नति के बीच, संतुलन की सृष्टि करता है। भौतिक एवं लौकिक सुख के अन्तर्गत अर्थ एवं काम हैं तथा आध्यात्मिक एवं पारलौकिक सुख के अन्तर्गत धर्म एवं मोक्ष हैं। पुरुषार्थ में भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों तत्व निहित हैं। इसके अन्तर्गत मनुष्य लौकिक उपभोग के साथ धर्म का अनुसरण करते हुए ईश्वरोन्मुख होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। अन्तर्दृष्टा ऋषिगण, धर्मशास्त्रकारों तथा दार्शनिकों के द्वारा मनुष्यों की प्रवृत्ति एवं स्वभाव को ध्यान रखते हुए पुरुषार्थ की संकल्पना की गयी है, जिसका प्रधान लक्ष्य है-परमार्थ की प्राप्ति एवं मनुष्य के भौतिक और आध्यात्मिक जीवन में संतुलन बनाना।

बीज शब्द पुरुष राजधर्म, निःश्रेयस, ऋत, इहलोक, रति, निर्गुण
भूमिका पुरुष शब्द की व्युत्पत्ति है पूः पुरं, शरीरं च। पुरि शते इति पुरुषः। अर्थात् जो इस पुर में (शरीर में) सोया हो, प्रवेश किया हो, शरीर में स्थापित हो, उस चैतन्याश को 'पुरुष' कहते हैं। 'अर्थ्यते प्रार्थ्यते सर्वेः इति अर्थः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार अभिलषित अर्थ (विषयों) को अर्थ कहते हैं। इस प्रकार 'पुरुषाणाम् अर्थः पुरुषार्थः' अथवा 'पुरुषैः अर्थ्यते इति पुरुषार्थः' के अनुसार संसार के सारे अभीष्ट इसमें समाहित हो जाएंगे। भारतीय मनीषियों ने मनुष्य जीवन के मुख्यतः चार लक्ष्य निर्धारित किये हैं धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। प्रथम तीन अभ्युदय के साधन हैं तथा अन्तिम मोक्ष अर्थात् निःश्रेयस का साधन है। सब ओर से उन्नति होना अभ्युदय का स्वरूप है। इसी प्रकार जिससे बढ़कर कोई भी श्रेष्ठतम फल न हो, उसकी प्राप्ति को निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष कहते हैं। केवल पुरुष ही इनका सम्पादन कर सकते हैं अतएव इन्हें 'पुरुषार्थ' कहा जाता है।

विषयवस्तु पुरुषार्थ भारतीय संस्कृति का मौलिक सिद्धांत है। मानव जीवन का सर्वांगीण विकास उसके पुरुषार्थ पर ही निर्भर रहता है। यह मनुष्य का वह आधार है, जिसके माध्यम से वह अपना आदर्श जीवन

जीता है तथा विभिन्न कर्तव्यों का मनोनिवेशपूर्वक पालन करता है। पुरुषार्थ द्वारा ही मनुष्य, बौद्धिक, नैतिक, शारीरिक, भौतिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्राप्त करता है। इस प्रकार मनुष्य लौकिक जीवन के प्रति जागरूक होते हुए पारलौकिक जीवन के प्रति भी उत्कंठित रहता है। भारतीय ज्ञान परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्टय के अंतर्गत मोक्ष मानव जीवन के चरम उद्देश्य एवं मानव की आन्तरिक आध्यात्मिक अनुभूति का प्रतीक है। अर्थ मनुष्य में वस्तुओं को प्राप्त करने व संग्रह करने की सहज प्रवृत्ति को इंगित करता है। काम मानव के सहज स्वभाव व भावुक जीवन को व्यक्त करता है तथा उसकी कामवासना और सौंदर्यप्रियता की प्रवृत्ति की तुष्टि करता है। अर्थ और काम के जाल में फंसकर मनुष्य कहीं भटक न जाए, इस उद्देश्य से उसे जीवन के उच्चतर आदर्शों तथा नैतिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहने की आवश्यकता भी प्रतीत होती है। इन्हीं उच्चतर आदर्शों, नैतिक कर्तव्यों के समन्वित रूप को ही भारतीय चिंतकों ने धर्म कहा है। अतः धर्म वह कड़ी है जो मानव जीवन के सांसारिक पक्ष को आध्यात्मिक पक्ष के साथ संयुक्त करती है जिससे एक स्तर पर मनुष्य सभी कर्मों से तृप्ति तथा इच्छाओं का नाश करके जीवन मुक्ति की अवस्था में पहुंच जाता है और महाशक्ति से उसका महामिलन हो जाता है यही स्थिति मोक्ष है। यही पुरुषार्थ की अवधारणा का आधार है। भारतीय जीवनयापन नियमावली के मूल में निहित पुरुषार्थ-चतुष्टय में से कोई भी पुरुषार्थ हेय अथवा दूसरे से कमतर नहीं है। अपने-अपने स्थान पर चारों ही महत्त्वपूर्ण हैं और चारों ही मिलकर एक सुगठित समाज और कल्याणकारी व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं।

महाभारत के शान्तिपर्व के राजधर्म प्रकरण में पुरुषार्थ पर बल देते हुए भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं बृहस्पति ने पुरुषार्थ को ही राजधर्म का मूल कहा था देवताओं ने उद्योगसे अमृत लाभ करके असुरोंको मारा था और देवराज इन्द्र अपने पुरुषार्थ से ही देवलोक और इहलोकके बीच विख्यात होके स्वर्गलोकके राजा हुए हैं। जगत् में जो कर्म में दक्ष तथा उत्साही है, उनके सब प्रयोजन सिद्ध होते हैं। हे पुत्र युधिष्ठिर तुम सदा पुरुषार्थ के निमित्त यत्न करना। पुरुषार्थ के विना केवल दैवके आसरे राजाओंके कार्य सिद्ध नहीं हो सकते भाग्य और पुरुषार्थमें दोनों कार्यकी सिद्धिके लिये साधारण कारण माने जानेपर भी मैं पुरुषार्थको श्रेष्ठ समझता हूं।

धर्म पुरुषार्थ में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष - इन चारों की गणना की गई है। इनमें सर्वप्रथम स्थान धर्म का है। धर्म का वास्तविक अर्थ केवल कोई मन्तव्य अथवा संस्थागत व्यवस्था एवं अनुशासन ही नहीं, अपितु जीवन-प्रणाली एवं आचार भी धर्म है, जो समाज के एक सदस्य के नाते या एक व्यक्ति के रूप में उसके कार्यों तथा गतिविधियों का नियमन करता है। संस्कृत के धृ धारणे धातु से मन् प्रत्यय लगाने पर धर्म शब्द की पुल्लिङ्ग अर्थ में निष्पत्ति होती है। धर्म का अर्थ होता है - धारण करना। अतः जिसे धारण किया जाये वह धर्म है। ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा।² अतः धर्म ऐसा तत्त्व है, जो व्यक्ति को देशकालानुसार आचरण की प्रेरणा देकर समाज में रहने के योग्य बनाता

है। स्पष्ट है कि धर्म यहाँ साम्प्रदायिक अर्थ में नहीं है, अपितु धर्म का अर्थ उन गुणों को धारण करना है जिनसे मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त करता है। 3 पुनः ध्यातव्य है कि अभ्युदय का तात्पर्य है, अभितः उदयः अर्थात् सब तरह से आगे बढ़ना उन्नति को प्राप्त करना। निःश्रेयस का तात्पर्य है कि निश्चित श्रेयो निःश्रेयसम् अर्थात् निश्चित फल, जो कभी क्षीण नहीं होता, ऐसे परम आनन्द की प्राप्ति। धर्म द्वारा इन दोनों प्रकार की उन्नतियों से मानवता का विकास होता है। अतः धर्म सभी पुरुषार्थों की कुञ्जी है। यह व्यक्ति के आचरण एवं व्यवहार की एक संहिता है जो उसके कर्मों को किसी भी देश काल एवं परिस्थिति के अनुसार नियंत्रित करता है तथा मानव को उज्ज्वल जीवन जीने के लिए ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करता है। भारतीय साहित्य में आचार अथवा सदाचार को धर्म का लक्षण माना गया है। मनु ने स्पष्ट वर्णन किया है आचार परम (मुख्य) धर्म है।⁴ महर्षि याज्ञवल्क्य सम्यक् संकल्प से उत्पन्न काम को भी धर्म मानते हैं।⁵ श्रीकृष्ण महाभारत के कर्ण पर्व में धर्म के स्वरूप के विषय में कहते हैं जिससे सम्पूर्ण सृष्टि बंधी है एवं जिससे सब प्रजा का धारण होता है, वही धर्म है। यदि धर्म छूट जाये, तो समाज के सारे बन्धन भी छूट जाते हैं।⁶ ऋग्वेद में इसे ऋत कहते हैं ऋत के रूप में यह सम्पूर्ण जगत पर शासन करता है और शासक के बिना शासन में अराजकता आ जाती है। अतः धर्म सृष्टि के संतुलन के लिये अनिवार्य तत्व है।⁷ तैत्तिरीयारण्यकम् में वर्णन मिलता है कि धर्म ही जगत का आधार है। प्रत्येक व्यक्ति के निःश्रेयस और अभ्युदय दोनों तरह की उन्नति धर्म से ही संभव है। धर्म ही इस विश्व का आधार है।⁸ भारतीय मनीषा के लिए धर्म एक अत्यंत जीवंत और रहस्यमय शब्द है। धर्म का समस्त रहस्य उसकी प्रवर्तन शक्ति में छिपा है जो कृत्य, चिंतन, आचार-विचार और प्रवर्तन में सहायक है, वही धर्म है।⁹ महाभारत के शान्तिपर्व में भी धर्म के लक्षण पर विचार किया गया है। शान्तिपर्व में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को धर्म के विषय में कहते हैं कि धर्म सबको धारण करता है-अधोगति में जाने से बचाता और जीवन की रक्षा करता है। धर्म ने ही सारी प्रजा को धारण कर रखा है, अतः जिससे धारण और पोषण सिद्ध होता हो, वह धर्म है।¹⁰ शान्तिपर्व के ही मोक्षधर्मप्रकरण में युधिष्ठिर द्वारा धर्म के विषय में जिज्ञासा करने पर भीष्म पितामह ने कहा- "वेद, स्मृति, सदाचार-तीन प्रकार के धर्म के लक्षण हैं। पण्डित लोग प्रयोजन को भी धर्म का चतुर्थ लक्षण कहते हैं। सच्चा धर्म जानने वाले पुरुष अपापविद होते हैं। आचार ही धर्म की निष्ठा है अतः आचार का अवलम्बन करने से धर्म का स्वरूप जाना जा सकता है।¹¹ शान्ति पर्व के धर्म अधर्म स्वरूप के निर्णय विषय में भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं कि जो मनुष्य दूसरों द्वारा किए हुए जिस व्यवहार को अपने लिए चाहता है दूसरों के प्रति भी वह वैसा बर्ताव करे उसे यह समझना चाहिए कि जो बर्ताव उसके अपने लिए अप्रिय है वह दूसरों के लिए भी प्रिय नहीं हो सकता।¹² धर्म केवल भाव मात्र नहीं है, वह यथार्थ जीवन में प्रकट होने वाला विश्वास भी है। धर्म की वृद्धि होने पर ही समस्त प्राणियों का अभ्युदय होता है और धर्म का हास होने पर सब का हास हो जाता है।¹³ शान्तिपर्व के मोक्षधर्म पर्व में तुलाधार-जाजलि सम्वाद के प्रसङ्ग में जाजलि मुनि की जिज्ञासा का शमन करते हुए तुलाधार ने धर्म का विवेचन इस प्रकार से किया है-जीवों से द्रोह न करके अथवा आपत्काल में अल्पद्रोह पूर्ण आचरण करके जो जीविका अर्जित की जाती है वही धर्म है। जो व्यक्ति सदा सबका मित्र है और जो मन, वचन और कर्म से परोपकार में संलग्न रहता है वही असली धर्म जानता है।¹⁴

अर्थ मनुष्य को सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए अर्थ महत्वपूर्ण है। परन्तु अर्थ मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन होने मात्र से ही पुरुषार्थ नहीं है। पुरुषार्थ होने के लिए उसे धर्म नियंत्रित होना पड़ता है। धर्मशास्त्रों ने जहाँ एक ओर अर्थ के अर्जन, रक्षण, परिवर्धन की स्वतंत्रता दी है वहीं दूसरी तरफ उनकी वृत्तियों पर नियंत्रण, धार्मिक

एवं लोकहित कार्यों की करणीयता के द्वारा इस धन के निस्सीम संचय, स्वेच्छाचारी भोग तथा अपव्यय पर भी अंकुश लगाया है। योगप्रधान अथवा भोग-प्रधान सभी क्रियाएँ अर्थ से ही सम्पन्न होती हैं। सुखद मानव जीवन की जितनी भी व्यवस्थाएँ हैं, वे सभी इस अर्थ से ही व्यवस्थित होती हैं। एक गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी व संन्यासी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की योग्यता, इस अर्थ से ही प्राप्त करता है। अर्थ, संसार की सर्वाधिक अभीष्ट वस्तु है क्योंकि धर्म और काम की सिद्धि भी इसी के हाथों से होती है। अर्थ को पुरुषार्थ का एक प्रमुख अंग माना है और उसका स्थान 'धर्म' के उपरान्त निर्धारित किया है। भारतीय संस्कृति में अर्थ का बहुत महत्व है। वेद में अर्थ को 'वसु' कहकर संबोधित किया गया है। ऋग्वेद में ऋषि ने अनुपक्षित वसु की कामना की है अर्थात् कभी नष्ट न होने वाला ऐश्वर्य प्रदान करने की कामना की है।¹⁵ अर्थ का मूल है- वृत्ति अर्थात् आजीविका। अर्थ पर ही धर्म और काम निर्भर हैं।¹⁶ अर्थ पुरुषार्थ से तात्पर्य मात्र धन या पैसे अथवा सम्पत्ति से नहीं है। यहाँ अर्थ का मतलब है- चाही गई वस्तु अथवा अभिलषित पदार्थ। क्योंकि अर्थ सभी का प्रिय पदार्थ है इसलिए सभी अर्थ को प्राप्त करना चाहते हैं। प्राणियों के सुख व समृद्धि का मूल है अर्थ, इस पुरुषार्थ से मनुष्य के इस लोक और परलोक के समस्त प्रयोजनों की प्राप्ति होती है।¹⁷

महाभारत के शान्तिपर्व में अर्थ के महत्व की चर्चा करते हुए अर्जुन युधिष्ठिर से कहते हैं कि "बिना अर्थ सिद्धि के धर्म और काम अपूर्ण होंगे यह पृथ्वी कर्मभूमि है, इसलिए इसमें प्रवृत्तिपरक कर्म ही प्रमुख हैं। धन प्राप्ति के विषय में उल्लेख है "कृषि, वाणिज्य, पशुपालन और विविध शिल्पकर्मों के द्वारा अर्थ की उपलब्धि होती है। अर्थ ही समस्त कर्मोंकी मर्यादाके पालनमें सहायक है। अर्थके बिना धर्म और काम भी सिद्ध नहीं होते- ऐसा श्रुतिका कथन है। धनवान् मनुष्य धनके द्वारा उत्तम धर्मका पालन और अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये दुर्लभ कामनाओंकी प्राप्ति कर सकता है, श्रुतिका कथन है कि धर्म और काम अर्थके ही दो अवयव हैं। अर्थकी सिद्धिसे उन दोनोंकी भी सिद्धि हो जायेगी।¹⁸ शान्तिपर्व में अर्जुन युधिष्ठिर से कहते हैं कि जैसे सम्पूर्ण नदियाँ पहाड़ों से निकलकर धीरे-धीरे विस्तार पाती हैं, उसी प्रकार धन एवं आर्थिक साधनों से ही सम्पूर्ण कार्य पूर्ण किए जा सकते हैं। धन के बिना मनुष्यों का धर्म, काम एवं प्राण-यात्रा का निर्वाह भी नहीं हो सकता। धनवान् के ही मित्र और बान्धव हैं धनसे धर्मका पालन, कामनाकी पूर्ति, स्वर्गकी प्राप्ति, हर्षकी वृद्धि, क्रोधकी सफलता, शास्त्रोंका श्रवण और अध्ययन तथा शत्रुओंका दमन - ये सभी कार्य सिद्ध होते हैं। धनसे कुलकी प्रतिष्ठा बढ़ती है और धनसे ही धर्मकी वृद्धि होती है। पुरुषप्रवर ! निर्धनके लिये तो न यह लोक सुखदायक होता है, न परलोक निर्धन मनुष्य धार्मिक कृत्योंका अच्छी तरह अनुष्ठान नहीं कर सकता।¹⁹ जिसके पास धनकी कमी है, गौएँ और सेवक भी कम हैं तथा जिसके यहाँ अतिथियोंका आना-जाना भी बहुत कम हो गया है, वास्तवमें वही कृश (दुर्बल) कहलाने योग्य है। जो केवल शरीरसे कृश है, उसे कृश नहीं कहा जा सकता।²⁰

काम-काम्यते इति कामः इस व्युत्पत्ति के अनुसार, विषय और इन्द्रियों के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाली इच्छा ही काम है। दूसरे शब्दों में, सुख-भोग रूपी आनन्द का अनुभव करना काम है। संसार के विषयों को भोगने की इच्छापूर्ति का दूसरा नाम काम है। काम के बिना प्राणियों की उत्पत्ति जीवने निर्वाह एवं सुख की प्राप्ति ही असंभव है। काम मनुष्य जीवन की सहज प्रवृत्ति है जो उसके इन्द्रिय सुख से संबंधित है। शास्त्र में काम के दो भाव बताए गये हैं "कामस्य द्वौ भावो रतिश्च प्रीतिश्च।" संकुचित अर्थ में काम शब्द स्त्री-पुरुष के बीच सम्भोग जनित सुख (रतिः) है। वहीं इसका अन्य भाव पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के विषयों के उपभोग से उत्पन्न सुख (प्रीतिः) काम कहलाता है। भारतीय

परम्परा में गार्हस्थ्य जीवन व्यक्ति और समाज दोनों ही दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। साथ ही व्यक्तिगत दृष्टि से भोगों को भोगने के बाद ही उसकी निःसारता का मान होता है। एवं उससे उत्पन्न होनेवाला वैराग्य मोक्ष साधना के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार 'काम' में कामना एवं वासना दोनों का निवेशन है। दोनों ही मनुष्य की प्रवृत्तियों में प्रमुख हैं, जो उसके मन को उद्वेलित करती हैं, जिनमें क्रमशः स्नेह, प्रेम, वात्सल्य, अनुराग, सौन्दर्य-प्रियता एवं आकर्षण हैं। संतान प्राप्ति, परिवार वंश की निरंतरता और पितृ ऋण से मुक्ति काम के ही कारण हैं, किन्तु काम के वशीभूत होकर धर्म का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए। कौटिल्य ने काम को अन्तिम श्रेणी में रखा है तथा बिना धर्म एवं अर्थ को बाधा पहुँचाए इसका पालन करने के लिए कहा है।²¹ वात्स्यायन ने कामसूत्र में कहा है कि पाँच ज्ञानेन्द्रियों की अपने मन के संकल्प के अनुसार अपने अपने विषयों के प्रति सुखानुभूति के कारण जो प्रवृत्ति होती है, उसे काम कहते हैं। काम मन का या चित्त का बीज है वह ईश्वर के निष्काम हृदय में पहले सदा से ही वर्तमान है। तत्वदर्शी मनीषियों ने अपने हृदय में सबके बन्धु इस काम का दर्शन किया है। यह काम धर्मद्रुम का पुष्प है। काम को मन का एक संकल्प माना जाता है।²² काम में चित्त का आकर्षण स्वयमेव होता है। यद्यपि अर्थ धर्म का साधन है परन्तु अर्थ की ओर मनुष्य समाज की प्रवृत्ति काम का ही प्रधान साधन समझ-कर होती है, न कि धर्म का मुख्य साधन मानकर। सुख से मनुष्य अतृप्त रहता है, इस कारण सुख की कामना सबको रहती है। पूर्णता का अभाव एवं अपूर्णता की अनुभूति को ही कामना कहकर पुकारते हैं। कामना मन की वासना की जननी है। सुख पाने की लालसा में मन काम अर्थात् वाह्य विषयों के पीछे दौड़ता रहता है। शांतिपर्व के आपद्धर्म पर्व में काम के प्रसङ्ग में इच्छाओं और कामनाओं की महत्ता पर बल देते हुए पाण्डु-पुत्र भीम युधिष्ठिर को कहते हैं कि "निष्काम पुरुष अर्थ या धन की इच्छा नहीं करता। कामहीन मनुष्य धर्म के अभिलाषी नहीं होते, इसलिए कामना ही उत्तम है। कृषक, पशुपालक, शिल्पी सभी व्यक्ति अपनी कामनाओं के अनुसार ही कार्यों में संलग्न रहते हैं। सभी प्राणी कामना रखते हैं। उससे भिन्न कामना-रहित प्राणी न कहीं है, न कभी था और न भविष्यमें होगा ही, अतः यह काम ही त्रिवर्गका सार है। महाराज ! धर्म और अर्थ भी इसीमें स्थित है जैसे दही से मक्खन, तिल से तेल मट्टे से घृत, काष्ठ से फूल और फल तथा पुष्प से मधु श्रेष्ठ है, उसी प्रकार धर्म और अर्थ से काम उत्तम है। इच्छा न होने पर लोग ब्राह्मणों को दान भी नहीं देते। फलतः धर्म-अर्थ-काम के इस त्रिवर्ग में काम ही प्रधान है। जो मनुष्य इन तीनों में से एक का सेवन करता है, वह जघन्य है, धर्म और अर्थ का सेवन करने वाला मनुष्य मध्यम है और तीनों विषयों का सेवन करने वाला पुरुष उत्तम है।"²³

मोक्ष - मानव जीवन की सार्थकता जिस गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर चिर शान्ति को प्राप्त होती है वही मोक्ष है। मोक्ष भारतीय दर्शन का आधारभूत एवं सर्वमान्य प्रत्यय है। मोक्ष का चिन्तन भारतीय संस्कृति के समस्त शास्त्रों के मूल में रहा है। पुरुषार्थ-चतुष्टय की अवधारणा में मोक्ष को साध्य अथवा परमपुरुषार्थ मानकर अन्य तीन पुरुषार्थों को इस साध्य की प्राप्ति हेतु साधन रूप में प्रस्तुत किया गया है। यही कारण है कि धर्म, अर्थ और काम के लिए त्रिवर्ग या त्रिसाधन शब्द का प्रयोग किया जाता है, किन्तु इससे यह तात्पर्य बिल्कुल नहीं है कि मोक्ष नामक पुरुषार्थ अन्यो की अपेक्षा अधिक अभीष्ट या श्रेष्ठ है। चारों ही पुरुषार्थ वागर्थीविव सम्प्रत्तौ की भाँति एक-दूसरे से संश्लिष्ट है तथा आपस में एक दूसरे के सहयोगी हैं, साधारणतः मोक्ष का अर्थ जीवन से मुक्ति प्राप्त करने से लिया जाता है। मोक्ष शब्द की व्युत्पत्ति 'मुक्त' धातु से हुई है जिसका अभिप्राय है मुक्त करना अथवा स्वतंत्र करना। अतः मोक्ष का अर्थ है आत्मा की मुक्ति। जन्म एवं पुनर्जन्म से छुटकारा तथा इस संसार के आवामन से मुक्ति ही मोक्ष है। मोक्ष आध्यात्मिक जीवन का

उच्चतम एवं अन्तिम आदर्श है। मनुष्य का धार्मिक एवं आध्यात्मिक जीवन मोक्ष के मार्ग पर तभी अग्रसर होकर प्रकाशमान होता है जब उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है। भारतीयों ने मोक्ष को अन्तिम पुरुषार्थ माना है। भोगायतन का भोगों के बन्धन से छुटकारा पाना ही मोक्ष है। शुभाशुभ कर्मों के फलों को भोगने के कारण शरीर भोगायतन कहलाता है। भारतीय मनीषियों ने मोक्ष का इतना तार्किक एवं गम्भीर विवेचन उपस्थित किया है कि इसे सम्पूर्ण आध्यात्म शास्त्र का उत्तम फल मानना श्रेयस्कर है।

महाभारत के शांतिपर्व के मोक्ष धर्म प्रकरण में गुरु-शिष्य-सम्वाद द्वारा मोक्ष का स्वरूप प्रस्तुत करते हुए उल्लेख किया गया है कि जीवात्मा का परमात्मा से पूर्ण तादात्म्य स्थापित करना ही मोक्ष है। इसी उपपर्व में पञ्चशिख का कथन है कि आत्मा को छोड़ कर शेष सब नाशवान् है और मोक्ष का अर्थ है उस अमरत्व की प्राप्ति। इस विषय में एक बात विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि यद्यपि प्रलयकाल में सभी प्राणी अपने-अपने कारण में समा जाते हैं तथा एकमात्र परब्रह्म ही शेष रहता है, तथापि ज्ञानाग्नि द्वारा जिनके स्थूल एवं सूक्ष्मशरीरादि दग्ध हो गए हैं, ऐसे ज्ञानीजन हमेशा के लिए परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करते हैं और उनका मोक्ष हो जाता है। जबकि जो जीव देवभाव को प्राप्त थे, वे यदि अपने कर्मफलों का भोग समाप्त करने से पहले ही लय को प्राप्त हो जाते हैं, तो कल्पान्तर में पुनः प्रजा की सृष्टि होने पर शेष फलभोग हेतु उन्हीं स्थानों को प्राप्त करते हैं, जहाँ पूर्व कल्प में स्थित थे।²⁴ किन्तु संतानोंके प्रति आसक्तिके कारण और भिन्न-भिन्न देवताओंकी प्रसन्नताके लिये अज्ञानियों द्वारा जो सकाम कर्म किये जाते हैं, ये सब मनुष्यके लिये नाना प्रकारके सुदृढ़ बन्धन हैं। जब वह इन बन्धनोंसे छूटकर सुख-दुःखकी चिन्ता छोड़ देता है, उस समय सूक्ष्म शरीरके अभिमानका त्याग करके सर्वश्रेष्ठ गति प्राप्त कर लेता है यहाँ सूक्ष्मशरीर के प्रति अभिमान का त्याग, मोक्ष प्रदान करने वाला बताया गया है। उस स्थिति में व्यक्ति सांसारिक बन्धनों से छूटकर मुक्त हो जाता है। जब पुण्य और पापका क्षय तथा उनसे मिलनेवाले सुख-दुःख आदि फलोंका नाश हो जाता है, उस समय सम्पूर्ण पदार्थोंमें सर्वथा आसक्तिसे रहित पुरुष आकाशके समान निर्लेप और निर्गुण परमात्मामें स्थित हुए उसका साक्षात्कार कर लेते हैं। जैसे मकड़ी जाला तानकर उसपर चक्कर लगाती रहती है; किन्तु उन जालोंका नाश हो जानेपर एक स्थानपर स्थित हो जाती है, उसी प्रकार अविद्याके वशीभूत हो नीचे गिरनेवाला जीव कर्मजालमें पड़कर भटकता रहता है और उससे छूटनेपर दुःखसे रहित हो जाता है। जैसे पर्वतपर फेंका हुआ मिट्टीका ढेला उससे टकराकर चूर-चूर हो जाता है, उसी प्रकार उसके सम्पूर्ण दुःखोंका विध्वंस हो जाता है। जैसे रूनामक मृग अपने पुराने सींगको और साँप अपनी केंचुलको त्यागकर उसकी ओर देखे बिना ही चल देता है, उसी प्रकार ममता और अभिमानसे रहित हुआ पुरुष संसार-बन्धनसे मुक्त हो अपने सम्पूर्ण दुःखोंको दूर कर देता है।²⁵ जैसे नद और नदियाँ समुद्रमें मिलकर अपने नाम और व्यक्तित्व (रूप) को त्याग देती हैं तथा जैसे बड़े-बड़े नद छोटी-छोटी नदियोंको अपनेमें विलीन कर लेते हैं, उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मामें विलीन हो जाता है यही मोक्ष है।²⁶

निष्कर्ष - इस प्रकार पुरुषार्थ चतुष्टय के चारों वर्गों का अध्ययन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि इन चारों के मध्य में घनिष्ठ अन्तःसम्बन्ध है। धर्म, अर्थ और काम त्रिवर्गों में तीनों का संतुलित अनुष्ठान ही लाभकारी होता है। इनमें से किसी भी एक का संतुलित अनुपात से अधिक मात्रा में अनुसरण नहीं करना चाहिये जिसके कारण अन्य वर्गों की प्राप्ति में बाधा पहुँचने लगे। समभाव से सेवित धर्म, अर्थ और काम-ये तीनों ही पुरुषार्थ वस्तुतः निर्मल और निर्दोष होते हैं, अतः इनके संतुलित एवं सम्यक् अनुष्ठान से चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष अनायास ही सिद्ध हो जाता है। अतः त्रिवर्ग मोक्षरूप साध्य का साधन है। मानव जीवन

सभी विषय इन्हीं पुरुषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत हैं। मानव समाज का सम्पूर्ण हित इसी में समाहित है। भारतीय संस्कृति का यह जीवन-दर्शन विश्व का अकेला और अनुपम दर्शन है, जिसमें जीवन के प्रति यदि मोह है तो योग भी है, बन्धन हैं तो मुक्ति भी है, आसक्ति हैं तो त्याग भी है। इस प्रकार भारतीय जीवन दर्शन में भौतिकता एवं सांसारिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता का भी संगम है। नियम एवं संयम पूर्वक पुरुषार्थ की नियोजना व्यक्ति के जीवन को व्यवस्थित एवं संतुलित आधार प्रदान करने के लिए की गयी थी। यदि पृथक-पृथक रूप से पुरुषार्थ-चतुष्टय पर दृष्टि डाली जाये तो इनमें से धर्म वह पुरुषार्थ है जिसके मूल में ही अन्य तीनों पुरुषार्थों की प्रवृत्ति समाहित है। क्योंकि धर्म से रहित अर्थ, काम और मोक्ष की पुरुषार्थता असम्भव है। धर्म प्रवृत्तिमूलक तथा निवृत्तिमूलक के भेद से दो प्रकार का होता है। धर्म जब प्रवृत्तिपरक होता है तो इस से आगे के दो पुरुषार्थ अर्थात्- अर्थ और काम अपनी पुरुषार्थता को प्राप्त करते हैं तथा जब यह निवृत्तिपरक होता है तो मोक्ष नामक परमपुरुषार्थ का प्राकट्य होता है, प्रादुर्भाव होता है।

संदर्भ :-

1. उत्थाने च सदा पुत्र प्रयतेथा युधिष्ठिर । न ह्यत्थानमृते देवं राज्ञामर्थप्रसिद्धये ॥ साधारणं द्वयं ह्येतदेवमत्थानमेव च । पौरुषं हि परं मन्ये देवं निश्चित्यमच्यते ॥ महा. शान्ति अ. 56. 14-15
2. वामन शिवराम आटे के द्वारा रचित संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, पृ.सं. 489
3. यतो अभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः । वैशेषिक सूत्र. 1/1/1
4. आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च । तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ॥ मनुस्मृति. 108
5. श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ॥ याज्ञवल्क्यस्मृति 1/7
6. धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः । यस्माद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥ महा. कर्ण अ. 69/59
7. ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त, यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ॥ दिवो धर्मधरुणो सदुषो नृञ्जातैरजाता अभि ये ननक्षः ॥ ऋग्वेद 5/16/2
8. धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति । धर्मेण पापमपनुदन्ति धर्मं सर्वं प्रतिष्ठितम् तस्माद् धर्मं परमं वदन्ति तैत्तिरीयारण्यकम् 10/63
9. तस्माद् धर्मप्रधानेन भवितव्यं यथात्मना । तथा च सर्वभूतेषु वर्तितव्यं यथात्मनि ॥ महा. शान्ति अ. 167/9
10. धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः । यः स्याद् युक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥ महा. शान्ति अ. 109/11
11. सदाचारः स्मृतिर्वदोच्चिविधं धर्मलक्षणम् । चतुर्थमर्थमित्याहुः कवयो धर्मलक्षणम् ॥ अपि ह्युक्तानि धर्माणि व्यवस्यन्त्युत्तरावरे । लोकजात्रार्थमिवैव धर्मस्य नियमः कृतः ॥ महा. शान्ति अ. 259/3-4
12. यदन्वैरिहितं नेच्छेदात्मनः कर्म पूरुषः । न तत् परेषु कुर्वीत जानन्नप्रियमात्मनः ॥ महा. शान्ति अ. 259/20
13. धर्मवर्धितवर्धन्तिसर्वभूतानिसर्वदा । तस्मिन् हसति हीयन्ते तस्माद् धर्मं न लोपयेत् ॥ महा. शान्ति अ. 90/17
14. अद्रोहणेव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः । या वृत्तिः स परो धर्मस्तेन जीवामि जाजले ॥ सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः । कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद जाजले ॥ महा. शान्ति अ. 262/6,9
15. न नो रास्व सह सवत् तोकवत् पृष्टिमद वसु । द्युमत् अने सुवीर्यं वर्षिष्ठं अनुपक्षितम् ॥ ऋग्वेद 3/13/7
16. वृत्तिमूलमर्थः अर्थमूलो धर्मो कामो । चण्डिक्य सूत्र. 1/89-90
17. "यतः सर्वप्रयोजन सिद्धिः सोऽर्थः । नीतिवाक्यमित् 2/1
18. महा. शान्ति अ. 167/11 - 14
19. महा. शान्ति अ. 8/16-20
20. कृशार्थः कृशगवः कृशभृत्यः कृशातिथिः । स वै राजन् कृशो नाम न शरीरकृशः कृशः ॥ महा. शान्ति अ. 8/24
21. "धर्मार्थाविवरोधेन कामं सेवेत्" अर्थशास्त्र. 17
22. कामस्तद्वये समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् । सतो बन्धुमसति निरभिन्दन् हृदा प्रतीच्या कवयो मनीषा ॥10.129/4
23. महा. शान्ति अ. 37/167
24. संहारकाले परिदधकाया ब्रह्माणमायान्ति सदा प्रजा हि । चेष्टात्मनो देवगणाश्च सर्वे यं ब्रह्मलोकादपराः स्म तेऽपि ॥ प्रजाविसर्गं तु सशेषकाले स्थानानि स्वान्येव सरन्ति जीवाः । निःशेषस्तल्पदं यान्ति चान्ते सर्वे देवा ये सदृशा मनुष्याः ॥ महा. शान्ति अ. 280/51-52
25. यथोर्णनाभिः परिवर्तमान-स्तन्तुक्षये तिष्ठति पाल्यमानः । तथा विमुक्तः प्रजहाति दुःखं विध्वंसते लोष्ट इवाद्रिमूच्छन् ॥ यथा रूः शूङ्गमथो पुराणं हित्वा त्वचं वाय्यरगो यथा चो विहाय गच्छत्यनवेक्षमाण-स्तथा विमुक्तो विजहाति दुःखम् ॥ महा. शान्ति अ. 219/47-48
26. यथार्णवगता नद्यो व्यक्तीर्जहित नाम च । नदाश्च ता नियच्छन्ति तादृशः सत्त्वसंक्षयः ॥ महा. शान्ति अ. 219/42
1. महाभारत महर्षि वेद व्यास शांतिपर्व डॉ. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर स्वाध्याय-मण्डल, भारत मुद्रणालय किल्ला पारडी जिला बलसाड गुजरात 1971
2. महाभारत महर्षि वेद व्यास गीता प्रेस गोरखपुर संस्करण सन्वत् 2078
3. ऋग्वेद संहिता भाग - 4 पं श्रीराम शर्मा आचार्य युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि, मथुरा संस्करण 2013
4. संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, वामन शिवराम आटे, ज्ञान प्रकाशन नई दिल्ली
5. मनुस्मृति मनु अनुवादक शिवराज आचार्य कोण्डन्नयायनः चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण 2016
6. याज्ञवल्क्यस्मृतिः महर्षि याज्ञवल्क्य हिंदीव्याख्याकार डा गङ्गासागरराय चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली संस्करण 2011
7. अर्थशास्त्र कौटिल्य व्याख्याकार वाचस्पति गौला चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी संस्करण 1996

डिजिटल युग : हिन्दी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति पर प्रभाव

डॉ. राकेश कुशवाहा

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)

सेंट अलॉयसियस इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, गौर, जबलपुर, म.प्र.
rakeshkushwaha0761@gmail.com

शोध सारांश - डिजिटल युग ने हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति के स्वरूप, प्रसार तथा अभिव्यक्ति में व्यापक परिवर्तन किए हैं। इंटरनेट, सोशल मीडिया, ब्लॉग, ई-पत्रिकाएँ, ई-पुस्तकें और डिजिटल मंचों के माध्यम से हिन्दी का वैश्विक विस्तार हुआ है। आज हिन्दी केवल मुद्रित माध्यम तक सीमित न रहकर डिजिटल संवाद की सशक्त भाषा बन गई है। इससे नए लेखकों को मंच मिला है तथा पाठक और लेखक के बीच सीधा संवाद संभव हुआ है।

डिजिटल माध्यमों ने साहित्यिक विधाओं को भी नया रूप दिया है। लघुकथा, ब्लॉग लेखन, वेब-कविता और डिजिटल कहानी जैसी नई प्रवृत्तियाँ उभरी हैं। साथ ही, ऑडियो-बुक, पॉडकास्ट और वीडियो सामग्री ने साहित्य को बहु-आयामी बनाया है। हालांकि, रोमन लिपि का बढ़ता प्रयोग, भाषा की शुद्धता में कमी और अंग्रेजी शब्दों का अत्यधिक मिश्रण जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। संस्कृति के क्षेत्र में डिजिटल युग ने लोकसंस्कृति, परंपराओं और सांस्कृतिक आयोजनों को वैश्विक मंच प्रदान किया है। डिजिटल अभिलेखन से सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण संभव हुआ है। इस प्रकार, डिजिटल युग हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृति के लिए अवसर और चुनौतियाँ—दोनों लेकर आया है, जिनका संतुलित उपयोग आवश्यक है।

मुख्यशब्द : डिजिटल युग, हिन्दी भाषा, हिन्दी साहित्य, संस्कृति, सोशल मीडिया, डिजिटल माध्यम

भूमिका- इक्कीसवीं सदी को डिजिटल युग के रूप में पहचाना जाता है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को गहराई से प्रभावित किया है। इंटरनेट, मोबाइल फोन, सोशल मीडिया, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा डिजिटल प्लेटफॉर्म ने न केवल हमारे सोचने, समझने और संवाद करने के तरीकों को बदला है, बल्कि भाषा, साहित्य और संस्कृति की संरचना को भी नए आयाम प्रदान किए हैं।

हिन्दी भाषा, जो लंबे समय तक पुस्तकों, पत्रिकाओं और मौखिक परंपराओं के माध्यम से विकसित होती रही, आज डिजिटल माध्यमों में सक्रिय उपस्थिति दर्ज करा रही है। डिजिटल युग ने हिन्दी साहित्य को नए पाठक दिए हैं और हिन्दी संस्कृति को वैश्विक मंच प्रदान किया है। साथ ही, यह युग कुछ चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करता है, जैसे भाषा की शुद्धता, साहित्यिक गुणवत्ता और सांस्कृतिक मौलिकता का संकट। प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य डिजिटल युग में हिन्दी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करना तथा इसकी संभावनाओं और चुनौतियों को रेखांकित करना है।

डिजिटल युग की संकल्पना और विशेषताएँ- डिजिटल युग आधुनिक मानव सभ्यता का वह चरण है जिसमें सूचना, संचार और ज्ञान का आदान-प्रदान डिजिटल तकनीकों के माध्यम से तीव्र, सरल और व्यापक रूप में होने लगा है। यह युग मुख्यतः कंप्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल फोन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा सूचना प्रौद्योगिकी के विकास का परिणाम है। डिजिटल युग ने मानव जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों— शिक्षा, व्यापार, शासन, स्वास्थ्य, मनोरंजन और सामाजिक संबंधों—को गहराई से प्रभावित किया है। डिजिटल युग की संकल्पना सूचना को डिजिटल रूप में संग्रहित, प्रसारित और विश्लेषित करने की क्षमता पर